सामान्य बनाम विशेष

✍ हृदय कांत दीवान

शिक्षा के समावेशी होने के संदर्भ को दो अलग–अलग तरह से समझने की आवश्यकता है। एक है, शिक्षा में शिक्षा के विभिन्न सरोकार : यथा उद्देश्य व लक्ष्य, उसकी प्रक्रिया, उसमें सम्मिलित विषयवस्तु, विषयवस्तु हेतु चयनित सामग्री व सामग्री का स्वरूप, शिक्षा को संभव बनाने वाले ढांचों की मान्यताएं व इन सभी बिंदुओं से संबंधित विभिन्न अनुभवों, उपयुक्त दृष्टिकोणों, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहरों की झलक। दूसरा है सभी नागरिकों का शैक्षिक ढांचों में शामिल हो पाना व उसके लिए आवश्यक परिस्थितियों व व्यवस्थाओं का निर्माण। ये दोनों अंतर्सबंधित हैं और इसलिए शिक्षा को समावेशी बनाने के संदर्भ में टुकड़ों में अलग–अलग आवश्यकताओं के बारे में सोचना उपयुक्त नहीं है। शिक्षा कैसे समावेशी होगी यह सोचते वक्त इन सभी के साथ–साथ ही शिक्षा कैसी हो, यह भी सोचना होगा।



ये सभी पहलू जटिल हैं और इनमें बड़ी चुनौतियां हैं। कुछ भी करने से पहले इन पहलुओं को समझना, इनसे जनित आवश्यकताओं को पहचानना व इनके क्रियान्वयन के रास्ते में आने वाली चुनौतियों को रेखांकित करना उपयोगी है। इस लेख में समावेशी शिक्षा के कुछ पहलुओं पर चर्चा है। किंतु यहां दी गई व्याख्या व उदाहरणों से परे भी बहुत कुछ है जो छूट रहा है, उस पर अभी स्पष्टता से कुछ कह पाना मेरे लिए मुश्किल है।

लक्ष्य कितने पास, कितने दूर

संविधान की प्रस्तावना में नागरिकों की बराबरी के बारे में कहा गया है कि हम यह प्रयास करेंगे कि सभी को आगे बढ़ने के अवसर मिलें। यह भी कहा गया है कि यह संविधान हम स्वयं को अर्पित कर रहे हैं, अतः ऐसा करने की जिम्मेदारी किसी व्यक्ति विशेष की न होकर हम सब नागरिकों की है। संविधान की इस मंशा को पूरा करने के लिए कई कानून व नियम बनाए गए हैं। ऐसा माना जाता रहा है कि हमारे देश में विभिन्न तरह की असमानताएं हैं जिनके चलते बराबरी के मौके सभी को नहीं मिल पाते। मौके मिल सकें इसके लिए समय–समय पर कई तरह के प्रावधान करने का प्रयास भी किया गया है।

इस दिशा में लिया पहला कदम यह निर्णय था– सभी को कम से कम प्रारंभिक शिक्षा का अवसर मिले, ऐसी शिक्षा जो उनके लिए सार्थक हो। यह प्रयास जो स्वतंत्रता के तुरंत बाद शुरू किया जाना था, आज तक पूरा होना तो

दूर, शायद ठीक से शुरू भी नहीं हो पाया है।

पिछले दो दशकों में इस दूरी को कम करने के कई प्रयास किए गए हैं। हालांकि स्कूल तक पहुंचने वाले बच्चों की संख्या बढ़ी है किंतु स्कूल में पूरे समय टिकने वाले व अधिकांशतः उपस्थित रहने वालों की संख्या उतनी नहीं बढ़ी है। जो बच्चे स्कूल जा भी रहे हैं, वे वहां पर क्या कुछ सीख पा रहे हैं, इस पर हमें भरोसा नहीं है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि स्कूल में उनमें जोश अथवा उत्साह का संचार होता है अथवा नहीं। जो बच्चे स्कूल से बाहर हैं, उनमें ज्यादातर उन समूहों के हैं जो आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से हाशिये पर हैं। स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या बढ़ी है, किंतु स्कूलों में उनके साथ व्यवहार की अनुपयुक्तता व सुरक्षा की कमी झलकने लगी है। यह एक महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य है जहां हमें समावेशी शिक्षा की संभावना को समझना होगा।

सरकारी व गैर सरकारी सामाजिक संगठनों द्वारा चलाई जाने वाली घोषित रूप से समावेशी शालाएं धीरे–धीरे सिमटकर पिछड़े बच्चों के लिए चलाई जा रही संस्थाएं बन गई हैं। निजी शालाओं में दर्ज बच्चे बढ़े हैं और सामान्य तौर पर उनमें बच्चों को दबाव व जोर डालकर ऐसे तैयार किया जाता है, जिससे वे ज्ञान को दोहरा पाएं। अत्यधिक जोर केंद्रीय आकलन व समाज में प्रचलित सीखने के मापदंडों से उभरती क्षमताओं पर ही है। ऐसे में कई बच्चों का अन्य विषमताओं के साथ–साथ शिक्षा की प्रक्रिया में भी हाशिये पर आ जाना तय ही है। इन मसलों को दरकिनार नहीं किया जा सकता।

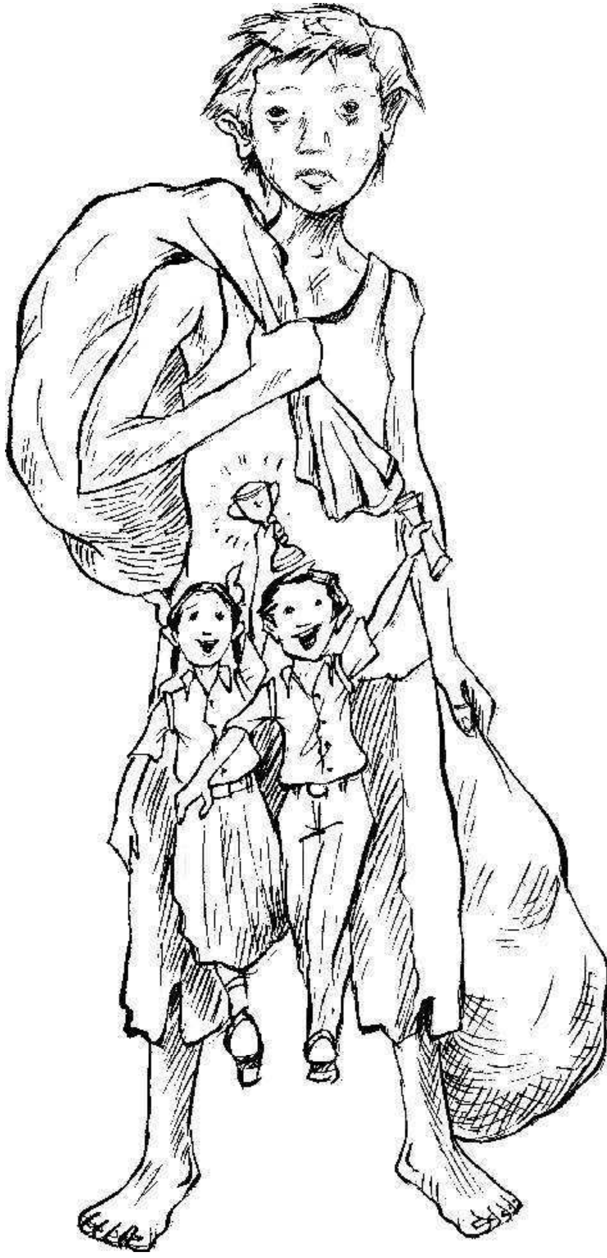
स्कूली ढांचा व पाठ्यक्रम

अगर सभी बच्चों को शिक्षा में समाविष्ट होना है तो यह समझना पड़ेगा कि हमारा स्कूल बच्चों को किस–किस दृष्टि से देखता है। उदाहरण के लिए हमारे स्कूल में व उससे जुड़े व्यक्तियों में लड़कियों की शिक्षा के प्रति क्या नजरिया है। हमारा स्कूली ढांचा शिक्षिकाओं व लड़कियों के नजरियों, जरूरतों व मनोवृत्ति को कितना ध्यान में रखकर काम करता है। एक पितृसत्तात्मक समाज में परिवार व स्कूल से जुड़े सभी लोगों का व्यवहार क्या लड़कियों को समझ पाता है। क्या यह व्यवहार स्कूल की सभी क्रियाओं में उन्हें बराबर मौका दे पाता है। क्या लड़कियां स्कूल में पूरी तरह सुरक्षित व स्वाभाविक रूप से व्यवहार कर सकती हैं, रह सकती हैं और जो चाहें कर सकती



हैं। हम जानते हैं कि उनके लिए व्यवहार में स्कूल की परिस्थिति, भौतिक सुविधाएं, पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रम, पुस्तकों में सम्मिलित सामग्री व कक्षा में, खेल के मैदान में, पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में व अन्य कार्यक्रमों में बराबरी का दर्जा व एक जैसे मौके मिलने की स्थिति अभी नहीं है।

जो लोग हाशिये पर हैं उनमें से कई आर्थिक दृष्टि से भी बहुत कमजोर हैं। कुछ आर्थिक दृष्टि से इतने कमजोर न होते हुए भी कमजोर हैं क्योंकि स्कूल का ढांचा व उसमें शामिल लोग उन्हें अपने में शामिल नहीं मानते। स्कूली ढांचा अधिकांशतः मुख्य धारा को उचित मानकर चलता है। उसकी अपेक्षा होती है कि सभी बच्चे अपेक्षित व्यवहार करें व अपेक्षित तरह से शाला के कार्यक्रमों में भाग लें। स्कूल के अनुसार व्यवहार करने का भी (जिसमें भाषा, एक–दूसरे से मेल–मिलाप, रीति–रिवाज आदि सभी शामिल हैं) एक उचित तरीका है जिसे सबको सीखना आवश्यक है। वह यह भी समझता है कि सभी को अपेक्षित दर से सीखना चाहिए।



स्कूल में मान्य मुख्य धारा में बहुत से आधार निहित हैं जो कि राजनैतिक व आर्थिक प्रभुत्व वाले लोगों के विश्वासों से उपजते हैं। ये बहुसंख्यक बच्चों (जिनमें लड़कियां सम्मिलित हैं) की समझ व पंसद को दरकिनार करते हैं। वे यह भी अपेक्षा करते हैं कि स्कूल में आने वाले सभी बच्चे अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विभिन्नताओं से इतर उन्हीं आधारों, मान्यताओं व अपेक्षाओं को प्रतिबिम्बित करेंगे जो कि उनके द्वारा तय की गई हैं। शिक्षा में सबके समावेश में यह एक और बड़ा व्यवधान है।

एक प्रश्न यह भी है कि जब समावेशी शिक्षा की बात करते हैं तब क्या उसका एक ही पहलू है कि सभी को शिक्षा में सराबोर किया जाना है या उसका यह भी मतलब है कि हम ऐसी शिक्षा की बात कर रहे हैं जिसमें सभी तरह के सरोकारों, अनुभवों व विश्लेषणों की झलक है। सभी के सरोकारों को सम्मिलित करने के संदर्भ में विमर्श हमेशा से होता रहा है, फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि हमारी पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री व आकलन के सिद्धांतों में सिर्फ एक तरफा सरोकार क्यों झलकते हैं। अगर हम समावेशी शिक्षा का अर्थ सिर्फ इतना लगाते हैं कि केवल उन बातों का स्कूलों में महत्त्व होना चाहिए जिन्हें सशक्त व प्रभुत्व वाले समाज का हिस्सा स्वीकार करता है तो फिर जाहिर है कि ऐसा स्कूल व उसका कार्यक्रम समावेशी नहीं हो सकता। हालांकि यह कहा जाता रहा है कि समावेशी शिक्षा का अर्थव्यवस्था से संबंध व शिक्षा की सभी लोगों के लिए उपादेयता के बारे में विचार किए बगैर हम समावेशी शिक्षा की बात सशक्त रूप से नहीं कर सकते।

'विशेष योग्यता वाले बच्चे' समावेश का एक और पहलू है, उन बच्चों को शामिल करना जो शारीरिक व मानसिक क्षमताओं में विशेष हैं। हालांकि हम यह कहते तो हैं कि सभी की क्षमताएं बराबर होती हैं लेकिन यह भी स्पष्ट है कि हर पहलू में सभी बराबर क्षमता नहीं रख सकते। यह जरूर कहा जा सकता है कि ज्यादातर क्षमताएं सभी इंसान एक हद तक सीख सकते हैं। किंतु उनको सीखने की गति व क्रम अलग–अलग भी हो सकता है।

विशेष क्षमताओं वाले बच्चों तक जाने से पहले यह प्रश्न भी उठता है कि क्या हमारा स्कूल सामान्य श्रेणी में आने वाले बच्चों की क्षमताओं का भी ध्यान रख पाता है या नहीं। क्या उसकी गति सिर्फ उनके लिए है जिनमें विशेष संज्ञानात्मक क्षमता व इस तरह की चीजें सीखने की रुचि है जो स्कूल में शामिल की जाती हैं। क्या हमारा गणित व हमारा विज्ञान क्षमताओं के सामान्य फैलाव के अनुरूप है अथवा वह सिर्फ उनके लिए है जो उसमें विशेष रुचि व सामर्थ्य रखते हैं। यह सवाल इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि हम गुणवत्ता के नाम पर ऐसे फ्रेमवर्क बना रहे हैं जिनमें लगातार बच्चों को और शिक्षकों को असफलता का टीका लगता रहेगा। बड़े–बड़े संस्थान व मुनाफा बनाने वाली दुकानें यह दबाव डाल रही हैं कि बच्चों के सीखने की गति

का आकलन किया जाना चाहिए। यह तय किया जाना चाहिए कि सभी बच्चे कुछ समय बाद एक स्तर तक पहुंच ही जाएं। यह प्रयास काफी पहले से होता आ रहा है। हालांकि नीति व विमर्श में इस तरह के आग्रह को हम सब गलत मानते हैं फिर भी स्कूल के ढांचे पर अविश्वास के चलते यह प्रयास किया जा रहा है कि कुछ मापदंड निर्धारित किए जाएं व सभी को उन मापदंडों पर मापा जाए। जाहिर है ये मापदंड न तो स्थानीय परिस्थिति, आवश्यकता अथवा रुचि का ध्यान रखेंगे और न ही इनमें दुनिया और देश में प्रभावी मान्यताएं ही निहित होंगी। हम यह आग्रह नहीं करते कि 5 साल का हर बच्चा 3 फीट का होगा या वह 30 सैकंड में 100 मीटर दौड़ ही लेगा अथवा यह कि ऐसी अन्य बहुत सारी चीजें कर लेगा जो सारे बच्चे सीखते हैं। फिर यह क्यों आवश्यक है कि हर बच्चा 6 साल का होते–होते अक्षरों को और शब्दों को पढ़ ही ले, गिनती सीख ले, साधारण जोड़–बाकी सीख ले। अतः समावेशी शिक्षा के संदर्भ में हमें सी.सी.ई. और ज्यादा स्पष्ट शब्दों में आकलन व मूल्यांकन की अवधारणा के बारे में ध्यान से सोचना पड़ेगा।

जब सामान्य दिखने व माने जाने वाले बच्चों का समावेश भी इतनी आसानी से नहीं हो सकता तो यह आवश्यक रूप से सोचने की बात है कि विशेष समुदाय वाले बच्चों का समावेश कैसे हो पाएगा। क्षमताओं में विविधता व उससे उपजी विशेष आवश्यकताएं कई तरह की हो सकती हैं। शाला की परिस्थिति व शिक्षक के लिए उपलब्ध लचीलेपन के चलते यह समझना मुश्किल है कि कैसे वह विशेष आवश्यकता वाले बच्चों पर कुछ ध्यान दे पाएगा। ऐसी कहीं कोई कल्पना नहीं है कि विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चे के लिए कुछ अतिरिक्त सहायता (अकादमिक व अन्य जरूरी संसाधन) स्कूल को व शिक्षक को मिलेगी। न यह समझ है कि ऐसे बच्चों को पहचान कर उनके साथ विशेष काम करने के लिए निकाले गए समय की वजह से अगर बाकी कक्षा संज्ञानात्मक क्षेत्रों में कुछ पिछड़ जाए तो उसका उससे कुछ हर्ज नहीं होगा। विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों का समावेश बहुत महत्त्वपूर्ण तो माना जाता है किंतु उसके लिए हमारे स्कूल के ढांचे, सुविधाओं व व्यवस्थाओं में क्या परिवर्तन करना चाहिए इस पर कोई ठोस कदम नहीं सोचे गए हैं।

विशेष योग्यता वाले बच्चों का एक दूसरा अर्थ भी है। जिस पर बहुत सारे लोगों का जोर है। उनका मानना है कि शिक्षा के सार्वजनिक होने के प्रयास में व उसमें तथाकथित कमजोर बच्चों को शामिल करने के प्रयास में शिक्षा का स्तर घटा दिया गया है। अतः शिक्षण प्रक्रिया में व पाठ्य सामग्रियों में उन विशेष योग्यता वाले बच्चों का भी ध्यान रखने की जरूरत है। ऐसा माना जाता है कि ये बच्चे विशिष्ट हैं व इनमें कुछ ऐसी प्रदत्त क्षमताएं है जिनके विकास के लिए इन्हें अलग तरह की चुनौतियां चाहिए। यह भी तर्क दिया जाता है कि ये ही समाज, तकनीक व विचारों को आगे ले जाने वाले इंजन हैं इसलिए इन्हें धीमी गति से सीखने वाले बच्चों के साथ रखने में इनका नुकसान है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और क्या व कितना सीखना है, तय करने में इन अत्यधिक योग्यता वाले बच्चों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

इस मसले से एक बार फिर यह प्रश्न उठता है कि क्या शाला में दबाव व बोझ से संदर्भ से कटी जानकारियों, मान्यताओं व व्यवहारों को सीखना गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है? क्या लगातार यह अहसास कि स्कूल में जो सिखाया जा रहा है, वह मैं नहीं सीख पा रही हूं और इसलिए मुझे अतिरिक्त संबल की आवश्यकता है, आत्मविश्वास बढ़ाने का उचित तरीका है? हमारे शैक्षिक प्रयासों में समावेश को इसी दृष्टि से देखा जाता है कि किसी न किसी तरह से सभी बच्चों को



एक ही दिशा में सोचने, एक ही स्तर पर पहुंचने व एक ही तरह के जवाब देने के लिए तैयार किया जाना चाहिए।

वर्तमान समाज की दृष्टि में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का तात्पर्य अपने समाज में घुलना मिलना नहीं वरन् ऐसी आकांक्षाओं की तरफ बढ़ना है जो उनके लिए सरल नहीं हैं। इसीलिए माता–पिता खुशी से बच्चों को अलग तरह की पोशाक, जिसमें टाई व अन्य ऐसे विलग करने वाले प्रतीक शामिल हैं, देकर बहुत खुश होते हैं। खुश होते हैं कि उनका बच्चा अलग तरह के व्यवहार सीख रहा है। इन व्यवहारों में क्या उचित है क्या अनुचित इसका अहसास व आकलन करने का उनके पास कोई तरीका नहीं होता। यह बात सही है कि किसी भी समाज में नए विचार आने के लिए बच्चों को नई दृष्टि देना उपयोगी है। किंतु यह प्रश्न फिर भी उठता है कि इस नई दृष्टि के पीछे क्या मान्यताएं व समझ होनी चाहिए। समुदाय की शिक्षा को तय करने में क्या भूमिका होनी चाहिए।

समुदाय की भूमिका

समावेशी शिक्षा के लिए समुदाय का समाविष्ट होना भी आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि शिक्षक का भी उस प्रक्रिया में समावेश हो और उसकी स्वयं की सक्रियता की व अपने सोच पर विचार करने व उसके अनुसार कार्य करने की जगह हो। समावेशी शिक्षा केंद्रीयकृत संचालन व नियंत्रण से संभव नहीं है। परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करने की स्वतंत्रता समावेश कर पाने के लिए आवश्यक है।

सभी को बराबर अवसर देने में महत्त्वपूर्ण एक पहलू यह है कि क्या सभी बच्चों को एक जैसा स्कूली माहौल मिल पाता है? क्या कोई तरीका है, जिससे कि हाशिये पर रहने वाले परिवारों के बच्चे व सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से सशक्त परिवारों से आने वाले बच्चों के घर पर उपलब्ध मौकों व प्रोत्साहन में अंतर को संतुलित किया जा सके? जैसे–जैसे शाला पहुंचने वालों की संख्या बढ़ी है व हर तरह के बच्चे स्कूल पहुंचने लगे हैं, वैसे–वैसे सशक्त परिवारों के बच्चे सार्वजनिक स्कूल छोड़कर निजी शालाओं में जाने लगे हैं। हालांकि अक्सर विमर्श में सार्वजनिक शालाओं में सरकारी स्कूलों को ही माना जाता है, किंतु यह आवश्यक है कि सार्वजनिक शालाओं में सरकारी स्कूलों व गैर मुनाफे के लिए चल रही शैक्षिक संस्थाओं को भी शामिल किया जाए। इन दोनों ही स्कूलों से सशक्त परिवारों के बच्चों का पलायन लगातार हो रहा है। ऐसा लगता है मानो उनके माता–पिता नहीं चाहते कि वे अन्य बच्चों के साथ मिलें भी, उठना–बैठना तो दूर की बात है। समावेशी शिक्षा के बारे में बात करते समय इस परिदृश्य को भी नहीं भुलाया जा सकता।

कुल मिलाकर समावेशी शिक्षा के बारे में सोचते समय इन सभी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। हाल ही में पारित अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 में भी समावेशी शिक्षा के बारे में कईं बातें निर्धारित की गई। अधिनियम की अनुपालना में समाज की भूमिका को भी रेखांकित किया गया है किंतु प्रश्न यह है कि यह भूमिका किस प्रकार की होगी और समुदाय की शिक्षा के प्रति समझ को कैसे सुदृढ़ किया जाएगा, जिससे कि उसकी दखल शिक्षा को सही दिशा में ले जाए। शिक्षक के प्रति विश्वास व आदर किस प्रकार आ सकेगा, जिससे कि वह यह महसूस कर पाए कि बच्चों को उनके स्तर से आगे बढ़ाने की गति वे ही तय कर सकते हैं। उनकी जिम्मेदारी है यह सुनिश्चित करना कि सभी बच्चे सार्थक रूप से सीख रहे हैं। समावेश करने में सभी स्टेकहोल्डर्स का ढांचे में सार्थक व सक्षम सहयोग होना आवश्यक है।

हृदय कांत दीवान : विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर में शिक्षा सलाहकार हैं।

खोजा के आगामी अंक में

'समावेशन' पर

भाषा विज्ञानी ***रमाकांत अग्निहोत्री*** का विशेष आलेख

'विकलांगता पर दया करें या एक नए समाज की परिकल्पना?'

''समावेशन'' पर आपके भी ऐसे विचारों का स्वागत है जो कोई नई बात कहते हों।